ओ३म

'वेदों का पुरूष–सूक्त और मन्त्रों में विहित रहस्यात्मक सत्य ज्ञान'

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

ऋग्वेद के दशवें मण्डल का नव्वेवां सूक्त पुरूष–सूक्त के नाम से विख्यात है। इस सूक्त की मन्त्र संख्या 16 है। यह सभी मन्त्र यजुर्वेद के 31 वें अध्याय में भी आये हैं। ऋग्वेद के 16 मन्त्रों के अलावा यजुर्वेद में 6 मन्त्र अधिक हैं। इन 6 मन्त्रों को **'उत्तर नारायण अनुवाक'** की संज्ञा दी गई है। अथर्ववेद के 19/6 सूक्त के भी 16 मन्त्र ऋग्वेदीय पुरूष–सूक्त के कुछ पाठान्तर और मन्त्रों के क्रमभेद के साथ उपलब्ध होते हैं। सामवेद में 5 मन्त्र पुरूष सूक्त के नाम विख्यात हैं। **पुरूष सूक्त कहे जाने का कारण इन मन्त्रों के देवता का पुरूष होना है। पुरूष ब्रह्माण्ड में व्यापक परमात्मा भी है और शरीर में बद्ध जीवात्मा भी है। सारा समाज भी पुरूष है। परमात्मा समस्त सृष्टि के भीतर भी व्याप्त है और बाहर भी है, जीवात्मा शरीर में एक ही स्थान हृदय में है। यह जीवात्मा शरीर के बाहर तो बिल्कुल नहीं है। पुरूष के रूप में जीवात्मा का शरीर कर्म करने और फल भोगने का साधन है। ब्रह्माण्ड के प्रसंग में परम पुरूष की रची यह सृष्टि जीवात्माओं के लिए ही भोग प्राप्ति सहित कर्म और ज्ञान प्राप्ति तथा तदनुसार आचरण कर मोक्ष प्राप्ति का साधन है, इसमें परमपुरूष ईश्वर का अपना कोई प्रयोजन नहीं है।**

पुरूष सूक्त पर शोध उपाधि के लिए अध्ययन करने वाली डा. कुसुमलता आर्या जी ने अपने प्रकाशित शोध प्रबन्ध के प्राक्कथन में पुरूष सूक्त के महत्व का उल्लेख कर लिखा है कि यही पूरूष सूक्त ऐसा है जो चारों वेदों में आया है। इसमें एक ऐसे पुरूष का वर्णन है जिसके हजारों शिर, चक्षु तथा पाद हैं। यही एक ऐसा स्थल है जहां जीवन के एक परम सत्य को, **'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** के अतिपरिमित शब्दों में कहकर मानों सब–कु छ कह दिया गया है। यही एक ऐसा सूक्त है जो अपने–आप में परिपूर्ण है, एक सम्पूर्ण इकाई है, एक साथ इतने अधिक विषय ! अतिस्वल्प शब्दों में इतने महान् भाव !! अति सीमित अक्षरों में असीम 'अक्षर' ईशान का महिमानुवाद !!! देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। ऐसे अनेक कारणों से इसका महत्व विदित होता है। इस सूक्त की महत्ता के कारण पाठकों के ज्ञानार्थ हम यजुर्वेद के 31 वें अध्याय को, जो पुरूष–सूक्त के नाम से विख्यात है तथा सौभाग्य से इस पर वेदों के शीर्षस्थ व अपूर्व विद्वान महर्षि दयानन्द का भाष्य भी उपलब्ध है, परिचित कराने के लिए सभी मन्त्र व उनके भावार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे पाठक सृष्टि के आरम्भ में ही ईश्वर, जीव, सृष्टि और राजा व समाज विषयक महत्वपूर्ण ज्ञान को जानकर लाभान्वित होंगे। मन्त्र व उनके भावार्थ आगामी पंक्तियों में प्रस्तुत हैं।

'सहस्रशीर्षा पुरूषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिम् सर्वत स्पृत्वाऽत्यतिष्ठ द्दशाङ्.गुलम्।।1।।' भावार्थः हे मनुष्यों ! जिस पूर्ण परमात्मा में हम मनुष्य आदि के असंख्य शिर, आंखें और चरण आदि अवयव हैं, जो भूमि आदि से उपलक्षित हुए पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर, जहां जगत् नहीं है वहां भी पूर्ण हो रहा है, उस सब जगत् के बनानेवाले परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य–शुद्ध–बुद्ध–मुक्तस्वभाव परमेश्वर को छोड़ कर अन्य किसी की उपासना तुम कभी न करो किन्तु उस ईश्वर की उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करो।

पुरूषऽएवेदम् सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।2।। भावार्थः हे मनुष्यों ! जिस ईश्वर ने जब जब यह सृष्टि हुई है, तब–तब उसी ने रची है, इस समय वह ही इसे धारण किए हुए है, फिर विनाश करके पुनः रचेगा। जिस ईश्वर के आधार से सब जगत् वर्त्तमान है और बढ़ता है, उसी सबके स्वामी परमात्मा की उपासना करो, इससे भिन्न की नहीं।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाश्च पूरूषः पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।3।। भावार्थः यह सब सूर्य–चन्द्रादि लोकलोकान्तर चराचर जितना जगत् है वह सब चित्र–विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्व को सिद्ध कर उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने–बढ़ने से भी परमेश्वर के चतुर्थांश में ही रहता है (और उसके शेष तीन अंश सृष्टि से रहित होकर केवल एकमेव ईश्वर से ही परिपूर्ण हैं) किन्तु (जीवात्मा वा मनुष्य) इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि (व विशालता) को नहीं पाता। और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं। इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन (सदा बना रहता है अर्थात वह) नहीं बिगड़ता किन्तु जगत् की अपेक्षा उसका महत्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरूषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः। ततो विष्वङ्. व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि।।4।। भावार्थः यह परमेश्वर कार्य जगत् से पृथक तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को बार बार उत्पन्न करता है, पीछे उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है।

ततो विराडजायत विराजोऽअधि पूरूषः। स जातोऽ अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।।5।। भावार्थः परमेश्वर से ही सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है। वह उस जगत् से पृथक् उसमें व्याप्त भी है और उसके दोषों से लिप्त न हो के इस सब जगत का अधिष्ठाता है। इस प्रकार सामान्य रूप से जगत् की रचना को कह कर विशेष कर भूमि आदि की रचना को क्रम से कहते हैं।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्। पशूस्ताश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्यषश्च ये।।6।। भावार्थः सबके ग्रहण करने योग्य जिस पूजनीय परमेश्वर ने सब जगत् के हित के लिये दही आदि भोगने योग्य पदार्थ और ग्राम के तथा वन के पशु बनाये हैं उसकी सब लोग उपासना करें।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।7।। भावार्थः हे मनुष्यों। जिससे सब वेद उत्पन्न हुए हैं, आप लोग उस परमात्मा की उपासना करो, वेदों को पढ़ो, उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्त के सुखी हो।

तस्मादशअजायन्त ये के चोभयादतः गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः।।8।। भावार्थः हे मनुष्यों ! गौ, घोड़े आदि ग्राम के सब पशु जिस सनातन पूर्ण पुरूष परमेश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं, तुम लोग उसकी आज्ञा का उल्लघंन कभी मत करो।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरूषं जातमग्रतः। तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये।।9।। भावार्थः विद्वान मनुष्यों को चाहिये कि **सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यास आदि से सदा हृदयरूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करे।**

यत्पुरूषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादाऽउच्येते।।10।। भावार्थः हे विद्वानो ! इस संसार में असंख्य सामर्थ्य ईश्वर का है। उस समुदाय में उत्तम अंग मुख और बाहू आदि अंग कौन हैं? यह कहिये?

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। उरू तदस्य यदवैश्यः पद्भ्याम् शूद्रोऽअजायत।।11।। भावार्थः जो मनुष्य विद्या और शमदमादि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम हों वे ब्राह्मण, जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्यों को सिद्ध करनेवाले हों वे क्षत्रिय, जो व्यवहारविद्या में प्रवीण हों वे वैश्य और जो सेवा में प्रवीण, विद्याहीन, पगों के समान मूर्खपन आदि न्यूनगुणयुक्त हैं, ये शूद्र करने और मानने चाहियें।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्य मुखादग्निरजायत।।12।। भावार्थः जो यह सब जगत् इसके कारण प्रकृति से ईश्वर ने उत्पन्न किया है, उसमें चन्द्रलोक मनरूप, सूर्यलोक नेत्ररूप, वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य, मुख के तुल्य अग्नि, औषधि और वनस्पति रोगों के तुल्य, नदी नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हड्डी के तुल्य हैं, ऐसा जानना चाहिये।।

नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षम् शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाम् ऽअकल्पयन्।।13।। भावार्थः हे मनुष्यों! यह जो इस सृष्टि में कार्यरूप वस्तु है, वह विराट्रूप कार्यकारण का अवयवरूप है। ऐसा जानना चाहिये।

यत्पुरूषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्मऽइध्मः शरद्धविः।।14।। भावार्थः जब बाह्य सामग्री के अभाव में विद्वान लोग सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की उपासनारूप मानस ज्ञान यज्ञ को विस्तृत करें जब पूर्वाह्ण आदि काल ही साधनरूप से कल्पना करना चाहिये।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरूषं पशुम्।।15।। भावार्थः हे मनुष्यों ! तुम लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त मानस यज्ञ को कर उससे पूर्ण ईश्वर को जान के सब प्रयोजनों को सिद्ध करो।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्व साध्याः सन्ति देवाः।।16।। भावार्थः मनुष्यों को चाहिये कि योगाभ्यास आदि से सदा ईश्वर की उपासना कर इस अनादि काल से प्रवृत धर्म से मुक्तिसुख को पाकी पहिले मुक्त विद्वानों के समान आनन्द भोगें।

अदभ्यः सम्भूतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे। तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे।।17।। भावार्थः हे मनुष्यों ! जो सम्पूर्ण कार्य (सृष्टि) करनेहारा परमेश्वर कारण से कार्य बनाता है, सब जगत् के शरीरों के रूपों को बनाता है, उसका ज्ञान और उसकी (वेद विहित) आज्ञा का पालन ही देवत्व है, ऐसा जानो।

वेदाहमेतं पुरूषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।18।। भावार्थः यदि मनुष्य इस लोक–परलोक के सुखों की इच्छा करें तो सबसे बड़े स्वप्रकाश और आनन्दस्वरूप, अज्ञान के लेश से पृथक, वर्त्तमान, परमात्मा को जान कर ही मरणादि अथाह दुःखसागर से पृथक हो सकते हैं। यही सुखदायी मार्ग है इससे भिन्न कोई भी मनुष्यों की मुक्ति का मार्ग नहीं है।

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।।19।। भावार्थः जो यह सर्वरक्षक ईश्वर स्वयं उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न करता है और उसमें प्रविष्ट होकर सर्वत्र विचरता है। अनेक प्रकार से प्रसिद्ध जिस ईश्वर को विद्वान लोग ही जानते हैं, **उस जगत् के आधाररूप सर्वव्यापक परमात्मा को जानकर मनुष्यों को आनन्द भोगना चाहिये।**

यो देवेभ्यऽआतपति यो देवानां पुरोहितः। पर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रूचाय ब्राह्मये।।20।। भावार्थः हे मनुष्यों! जिस जगदीश्वर ने सब (प्राणियों) के हित के लिये अन्न आदि की उत्पत्ति हेतु सूर्य को बनाया है, उसी परमेश्वर की उपासना करो।

रूचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन्। यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे।।21।। भावार्थः विद्वानों का यही पहला कर्त्तव्य है कि वेद, ईश्वर और धर्मादि में रूचि, (वेदधर्म का) उपदेश, अध्यापन, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाना। ऐसा करने से ही सब उत्तम गुण और भोग (मनुष्ययों को) प्राप्त हो सकते हैं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण।।22।। भावार्थः हे राजा आदि मनुष्यों! जैसे ईश्वर के न्याय आदि गुण, व्याप्ति, कृपा, पुरूषार्थ, सत्य रचना और सत्य नियम हैं वैसे ही तुम लोगों के भी हों, जिससे तुम्हारा उत्तरोत्तर सुख बढ़े।

हम आशा करते हैं कि इस लेख के अध्ययन से पाठक वेदों में वर्णित ईश्वर व जीव के स्वरूप, जीवात्मा वा मनुष्यों को अपने कर्तव्य, उद्देश्य एवं लक्ष्य सहित उपासना आदि का ज्ञान होगा। पाठक वेदादि ग्रन्थों सहित ऋषियों के दर्शन, उपनिषद एवं महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर ईश्वरोपासना व यज्ञ आदि कर्मों से दुःखों से छूटकर मोक्ष मार्ग पर अग्रसर होंगे और इहलौकिक व पारलौकिक जीवन की उन्नति करेंगे। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं।

–मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला–2
देहरादून–248001
फोनः09412985121